अे र ह न

(समकालीन हिंदी समीक्षा के प्रतिमान के विशेष सन्दर्भ में)

संपादक

आकांक्षा भट्ट

डॉ. दीपक कुमार

ओरहन

युवाओं की कलम से ...

(समकालीन हिंदी समीक्षा के प्रतिमान के विशेष सन्दर्भ में)

संपादक

आकांक्षा भट्ट

डॉ. दीपक कुमार

ISBN: "978-93-87621-62-6"

प्रकाशक: नॉटनल

© संपादक

विषयक्रम

- ***समकालीन आलोचना की बहस***

समसामयिक हिंदी आलोचना की बहस : नये प्रतिमानों की तलाश में	*दिविक रमेश*	12
समकालीन आलोचना की युवा सदी	*भरत प्रसाद*	19
हिंदी नाट्यलोचन का नया परिदृश्य	*डॉ.लव कुमार*	35
प्रतिमान का प्रश्न	*अनंत मिश्रा*	42
समकालीन हिंदी आलोचना की समस्या और युवा लेखन का महत्त्व	*डॉ. विशाल कुमार सिंह*	48
समकालीन समीक्षा के मानदण्ड और नयी संभावनाओं की तलाश	*डॉ. गीता सिंह*	59
आलोचना का प्रजातंत्र	*डॉ. श्रीराम परिहार*	66
हिंदी आलोचना की 21वीं सदी	*प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय*	71
हिंदी आलोचना व उत्तर आधुनिक विमर्श	*डॉ. अक्षय रस्तोगी*	78
रचना और आलोचना	*नरेंद्र परिहार*	84

- ***साहित्य और राजनीति***

क्रांतिकारी साहित्य	*प्रो. चमनलाल*	87
सांप्रदायिकता और साहित्य	*डॉ. मोबिन*	92
मुक्तिबोध के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा के पूर्वग्रह	*डॉ. जे. आत्माराम*	97
भूमंडलीकरण की दो धारी तलवार पर समाज और साहित्य	*डॉ. अजीत कुमार पटेल*	107
राजनीति का 'महाभोज'	*डॉ. अनिल कुमार*	112
राष्ट्रवाद	*नरेश कुमार*	121
राष्ट्रवाद की भूमिका	*नगेन्द्र सिंह पटेल*	126

- ***समकालीन विमर्श***

दलित विमर्श : आलोचना की नई चुनौतियाँ	*राजेन्द्र कुमार*	131
हिंदी दलित कविता में राजनीतिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन	*संदीप कुमार*	140
विवाह को 'जीवन बीमा' कहने वाली लेखिका प्रियम्वदा देवी	*सुरेश कुमार*	147
असमिया उपन्यासों में अभिव्यक्त बड़ो-कचारी और तीवा जनगोष्ठी की समाज और संस्कृति	*दुलुमनी तालुकदार*	153
21वीं सदी में भारतीय विकास का सच और आदिवासी समाज	*डॉ. मनोज कुमार*	163
हिंदी में अल्पसंख्यक विमर्श और अनवर सुहैल का साहित्य	*जीनत सबा*	169
भारतीय साहित्य में सिविल सैनिक संबंध	*डॉ. भीम सिंह*	176
हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का अंतर्संबंध : कन्नड़ के सन्दर्भ में	*डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'*	182
भाषाई भू : परिदृश्य और भारतीय राष्ट्र राज्य (विशेष सन्दर्भ में मुम्बई)	*प्रियंका शुक्ला*	191
इक्कीसवीं सदी का भारतीय सिनेमा	*महेश सिंह*	197

- ***संवाद***

समकालीन आलोचना पर युवा आलोचक अजय तिवारी से बातचीत : साक्षात्कार-कर्ता डॉ. दीपक कुमार और आकांक्षा भट्ट	206

इस किताब के बारे में

समकालीन या समकालीनता के बारे में बात करना या कहें कि आज के दौर के बारे में बोलना, लिखना बेहद चुनौतीपूर्ण भरा कार्य है। क्योंकि समकालीनता के आग्रह में आधुनिकता एवं प्रासंगिकता जैसे विचारों से भी टकराना पड़ता है। सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर जो कला, संस्कृति, साहित्य या मानव मूल्य निर्मित होते हैं, समकालीनता उसे आधुनिकता से जोड़ती है। जबकि आधुनिकता ये बतलाती हुई चलती है कि ये सारे मूल्य, चिंतन या स्थितियाँ जो हैं वह समकालीन हैं। अर्थात समकालीनता, आधुनिकता का आधार तत्व है। ऐसे में प्रासंगिकता का सवाल भी खड़ा होता है कि कौन सी चीज प्रासंगिक है और 'समकालीन' शब्द अगर अपने-आप में बहुआयामी और व्यापक शब्द है तो प्रासंगिकता के सन्दर्भ में समकालीनता का दायरा भी अपने समय के तात्कालीक एवं अपने से पूर्ववर्ती साहित्य में आने-जाने या देखने की छूट देता है। या यह कह सकते हैं कि अपने इतिहास को पुनर्मूल्यांकित करने का अवसर देता है। प्रासंगिकता एक हद तक अपनी परम्परा के पुनर्मूल्यांकन का अवसर देती है।

पुनर्मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में प्रासंगिकता अपने-अपने प्रतिमान भी निर्धारित करती है। समकालीन हिंदी समीक्षा अपने इतिहास और परम्परा के आधार पर साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास है। मजेदार बात यह है कि चाहे कविता हो या कहानी, उपन्यास, निबंध आदि हो, समकालीन हिंदी समीक्षा, परम्परा के पुनर्मूल्यांकन के सहारे कबीर, तुलसी, देव, बिहारी, प्रेमचंद, आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नामवर सिंह आदि का एक कैनन या प्रतिमान निर्धारित करती है। इसी प्रकार उत्तर-आधुनिकता, उत्तर–संरचनावादी या विखंडनवादी नई समीक्षा ने भी अपना प्रतिमान निर्धारित किया है। समकालीन साहित्य में दलित, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्यक, कृषक, किन्नर आदि डिस्कोर्स की अवधारणा भी परम्परा के इसी पुनर्मूल्यांकन के द्वारा ही उद्भुद हुए हैं और इनके द्वारा पुनर्मूल्यांकन से स्थापित प्रतिमानों ने हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि भारतीय समाज और उसके इतिहास को ही नए सिरे से व्याख्यायित करने का आग्रह किया है, जबकि समकालीनता के दबाव ने कुछ अति-परम्परावादी समीक्षकों को समकालीन साहित्य में आये इन नए प्रतिमानों से बदहजमी होती है। दरअसल हिंदी आलोचना की जितनी चर्चा व लेखन कार्य समकालीन समीक्षा के दौर में हुई, उतनी शायद स्वयं शुक्ल युग या शुक्लोत्तर (आजादी से पहले) में भी नहीं हुई थी। साहित्य में प्रगतिशील मूल्यों के साथ प्रगतिवादी युग ने शोषित समाज के नए प्रतिमानों को स्थापित किया। एक

बात ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटिश उपनिवेश के अधीन भारत में जिस वक्त आजादी के नारे लग रहे थे, और देश में आजादी के नाम पर जन-व्यापी क्रांतियाँ हो रही थीं। उस वक्त हिंदी साहित्य में एक वर्ग ऐसा था जो ब्रिटिश राजसत्ता की अमानवीयता, किसान, मजदूर, जन-चेतना एवं जन-क्रांति आदि प्रतिमानों के सहारे साहित्य रच रहा था। वहीं एक वर्ग व्यक्ति-अस्मिता, संत्रास, कुंठा, अजनबीयत आदि के मनोभावों का साहित्यिक प्रतिमान रच रहा था और यह वही समय है जब प्रथम 'तारसप्तक' (1943) का प्रकाशन हुआ था। और वैश्विक धरातल पर महामानव-लघुमानव आदि की बात की जा रही थी। हिंदी समीक्षा में इस दूसरे वर्ग के द्वारा रचित एवं वैश्विक विचारधाराओं से अभिप्रेरित साहित्यिक प्रतिमानों को 'आधुनिकता' के रूप में देखा जाने लगा। दरअसल इन दोनों वर्गों की 'प्रगतिशीलता' एवं 'आधुनिकता' के वैचारिक विचलन ने ही नई कविता के समानांतर नई कहानी, नई समीक्षा आदि की विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार की। इस आधार पर पाँचवें और छठवें दशक में 'प्रगतिशील लेखक संघ' और 'परिमल' की भूमिका को देखा जा सकता है।

साहित्य की दृष्टि से या कह लीजिए हिंदी समीक्षा की दृष्टि से भी भारत की आजादी के बाद का दौर बेहद महत्वपूर्ण रहा है। जिसमें साहित्य और संवाद का एक व्यापक सिलसिला चलता है। भारत ही नहीं हिंदी साहित्य के युगों में भी इतनी सारी घटनाएँ होती हैं इतने युगों का बवंडर खड़ा होता है कि कई विद्वान उस दौर को घटनाओं का दौर या घटनाओं का साहित्य कहते हैं। कारण स्पष्ट था, उस दौर में वैश्विक स्तर पर शीत युद्ध के साथ आजादी मिली। आजादी के बाद एक तरह से लोगों में वैचारिक स्थिरता आयी, तब तक तीसरा 'तारसप्तक' (1959) का प्रकाशन भी हो चुका था। नेहरू एवं शास्त्री जैसे दो महान नेताओं का युग चला। 60 तक आते-आते शीत युद्ध की समाप्ति तक भारतीय राजनीति में एक तरह की वैचारिक स्थिरता देखी गयी। लेकिन जल्द ही नेहरू और शास्त्री के देहावसान ने इस वैचारिक स्थिरता में पुनः एक विचलन पैदा कर दिया। यह दौर भारत के आजादी से मोहभंग होने का दौर था। आमजन मानस को लगने लगा कि यह आजादी दरअसल गरीब,असहाय, मजलूम, शोषित, उत्पीड़ित जनता की नहीं बल्कि मुट्ठी भर नेताओं एवं धन-कुबेरों, पूँजीपतियों की आजादी है। इस दृष्टि से सत्ता के खिलाफ़ 1967 के बंगाल के नक्सलबाड़ी आन्दोलन को देखा जा सकता है जिसने देश की राजनीति को ही नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से भी प्रभाव डाला। 70 के दशक में अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी इसकी गूँज सुनाई देती है। इसी बीच भारतीय राजनीति में इंदिरा गाँधी का उदय, भारत-पाक युद्ध, 1975 में घोषित आपातकाल, दो साल बाद के आम चुनाव में कांग्रेस की करारी हार के बाद नवगठित सरकारें और पुनः से जनता की (नवगठित सरकार) असंतुष्टि, मध्यावधि में कांग्रेस का पुनरागमन, इंदिरा